अमृताशीति का ५७वाँ श्लोक आया है।

स्वरनिकरविसर्गव्यञ्जनाद्यक्षरैर्यद्,
रहितमहितहीनं शाश्वतं मुक्तसङ्ख्यम्।
अरसतिमिररूपस्पर्शगन्धाम्बुवायु-
क्षितिपवनसखाणुस्थूल दिक्चक्रवालम्।।

आहाहा! भगवान आत्मा में स्वर समूह नहीं है। आहाहा! यह अक्षर का समूह, वह तो जड़ की पर्याय है। आत्मा में नहीं है। आहाहा! मानो आत्मा बोलता हो, ऐसा लगता है। ऐसा लगता है, परन्तु ऐसा नहीं है। आत्मा तो अरूपी चैतन्य आनन्दघन है और अक्षर तो परमाणु का पिण्ड है। वह स्वरसमूह... आहाहा! **विसर्ग..** नहीं। भगवान में विसर्ग.. आता है न? क, ख, ग यह विसर्ग भी आत्मा में नहीं है। **व्यञ्जनादि अक्षर...** अंक आदि के अक्षर। वे कुछ भी नहीं हैं अर्थात् १, २, ३, ४ इत्यादि यह आत्मा में नहीं हैं। क, ख, ग जैसे आत्मा में नहीं, वैसे १, २, ३, ४ संख्या आत्मा में नहीं है। आहाहा!

अहितरहित है;... प्रभु तो अहितरहित है। अन्दर अहित की गन्ध नहीं है। पूर्णानन्द का नाथ शिवपुरवासी। वह अन्दर रहा हुआ आसी। आसी अर्थात् है। अन्दर स्वरूप से भगवान पूर्णानन्द में अहित-रहित शाश्वत् है। आहाहा! शब्द तो सरल है। शब्द शब्दरूप से है, परन्तु अन्तरस्वरूप में नहीं है। व्यवहार, व्यवहाररूप से है परन्तु वस्तु में नहीं है। आहाहा! अक्षरों का स्वर, शास्त्र का समुदाय कान में पड़े परन्तु वह कहीं तुझमें नहीं है। आहाहा! शास्त्र है। है, कान में पड़ता है परन्तु वस्तु में नहीं है। आहाहा! तेरा काम तो तुझसे करना है। वह शास्त्र शब्द से भी तेरा काम नहीं होता। आहाहा!

शाश्वत् है... भगवान तो शाश्वत् प्रभु अन्दर है। **अन्धकार..** से रहित है। आत्मा में अन्धकार का अंश नहीं है, वह तो प्रकाश का पुँज है। आहाहा! चैतन्य का सागर उछलता है। चैतन्य अन्दर में उछलता है। आहा! मुनि को प्रगट उछलता है। पर्याय में उछलता है। द्रव्य में उछलता दिखता है। आहाहा! वह उछलता दिखे, उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन का उछलना हुए बिना रहे नहीं। अन्धकाररहित। **तथा स्पर्श,...** रहित है। भगवान में स्पर्श नहीं है। किसे स्पर्श करे? किसे छुए? आहाहा! यह दूसरे की बात है, हों! यह योगीन्द्रदेव का श्लोक है।

रस,... नहीं है। खट्टा, मीठा रस, वह रस आत्मा में नहीं है। तथा ठण्डा, गरम, शीतल, वह कोई स्पर्श आत्मा में नहीं है। **गन्ध,...** सुगन्ध-दुर्गन्ध आत्मा में नहीं है। **रूप...** आत्मा में नहीं है। आहाहा! **पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के अणुओं रहित है,...** आहाहा! पृथ्वी के अणुओं से रहित, पानी के अणुओं से रहित, अग्नि के अणुओं से रहित, वायु के अणुओं से रहित। वायु, वायुरूप से है। इस भगवान में वह नहीं है। आहाहा! **तथा स्थूल दिक्चक्र (दिशाओं के समूह)...** पूर्व, पश्चिम, यह दिशा-बिशा आत्मा में नहीं है। आहाहा! वह तो चिदानन्दस्वरूप, सहजात्मस्वरूप, परमानन्द का नाथ अकेला आनन्द गंज, आनन्द का पिण्ड प्रभु है। उसमें ये अक्षर आदि या दिशाएँ (नहीं है)। पूर्व दिशा या पश्चिम दिशा, वह कोई आत्मा में नहीं है। आहाहा! **(दिशाओं के समूह) रहित है।** यह आधार दिया है। अब टीकाकार स्वयं (श्लोक कहते हैं)।

श्लोक-६२

और (४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज सात श्लोक कहते हैं) —

(मालिनी)

दुरघ-वन-कुठारः प्राप्त-दुःकर्म-पारः,
पर-परिणति-दूरः प्रास्त-रागाब्धि-पूरः।
हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः,
सपदि समयसारः पातु मामस्त-मारः ।।६२।।

(वीरछन्द)

दुष्ट पाप वन को कुठार अरु दुष्कर्मों को नष्ट किया।
पर-परिणति से दूर सदा रागोदधिपूर विनष्ट किया॥
विविध विकार हनन कर्ता जो सुखसागर का नीर अहो!
काम कलंक विनाशक सार-समय मम रक्षा शीघ्र करो॥६२॥

श्लोकार्थः—जो (समयसार), दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है, जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है (अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है), जो परपरिणति से दूर है, जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है, जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है, जो सच्चे सुखसागर का नीर है और जिसने काम को अस्त किया है, वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो।।६२॥

श्लोक-६२ पर प्रवचन

और (४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज सात श्लोक कहते हैं)—यह गाथा पूर्ण करते हुए सात श्लोक कहते हैं।

दुरघ-वन-कुठारः प्राप्त-दुःकर्म-पारः,
पर-परिणति-दूरः प्रास्त-रागाब्धि-पूरः।

हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः,
सपदि समयसारः पातु मामस्त-मारः ।।६२।।

भगवान आत्मा अर्थात् 'समयसार' कहा। आत्मा कहो या 'समयसार' कहो। आहाहा! भगवान आत्मा **जो (समयसार), दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है,...** यह अपेक्षा से कहा है। उसमें है नहीं परन्तु **दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है,...** ऐसा कहा है। है नहीं। **दुष्ट पापों के वन को छेदने का...** क्योंकि पाप हो, पापरूप वन-विस्तार हो, उसे छेदे, तब कुठार कहलाता है परन्तु आत्मा में तो वे (पाप) हैं नहीं। आहाहा! **जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है...** भगवान, अन्दर दुष्ट कर्म आते हैं... आहाहा! और उनके फलरूपी भाव भी अपने में दिखते हैं, परन्तु वे वस्तु में नहीं हैं। आत्मतत्त्व में कोई कर्म का फल नहीं है। आहाहा!

जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है (अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है),... आहाहा! 'कर्म विचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई।' वह भूल भी स्वरूप में नहीं है। आहाहा! भूल तो पर्याय में है। व्यवहाररूप से भूतार्थ है। १४वीं गाथा में कहा न, व्यवहाररूप से भूतार्थ है, निश्चयरूप से नहीं। अन्दर वास्तविक तत्त्व में वह चीज़ नहीं। आहाहा! **(अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है), जो परपरिणति से दूर है,...** राग की परिणति से भगवान अन्तर में दूर है। परिणति को छूता ही नहीं। ऐसा द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा... आहाहा! सवेरे कहा था न? चाहे तो अक्षर के अनन्तवें भाग में पर्याय में विकास हो जाये, परन्तु वस्तु तो जितनी है, उतनी ही है। चाहे तो केवलज्ञान हो जाये। जरा कठिन बात है। द्रव्य तो ऐसा का ऐसा उतना ही है। द्रव्य में कभी कुछ न्यूनाधिकता होती है, ऐसा तीन काल में नहीं होता। ऐसी कोई अलौकिक अचिन्त्य चमत्कारी वस्तु आत्मा है। आहाहा! कि अक्षर के अनन्तवें भाग में पर्याय रहे, तो दूसरी शक्ति तो विशेष इसमें रहनी चाहिए न? कि नहीं, वह तो जो है, वह है। केवलज्ञान प्रगट होता है, तब पूर्ण दशा प्रगट हुई, ऐसी दशा (प्रगट हुई), तो उतनी तो अन्दर में कमी हुई न? आहाहा! उसमें कमी-बमी है नहीं। केवलज्ञान होवे तो कमी नहीं और अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद में (ज्ञान) रहा तो पुष्टि नहीं। वह तो अनादि-अनन्त एकरूप सच्चिदानन्द्र प्रभु सम्यग्दर्शन का विषय पूर्णानन्द के नाथ में न्यूनाधिकता है नहीं। आहाहा!

परपरिणति से दूर है, जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,... नष्ट किया

है, ऐसी बात करते हैं, परन्तु उसमें है ही नहीं। किन्तु समझाना है न? **जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,...** आहाहा! ऐसे सच्चे सुखसागर का नीर है, परन्तु वस्तु तो ऐसी की ऐसी ही है। उसे कोई यहाँ राग का नाश करना, ऐसा नहीं है। वह तो राग था, वह स्वभाव के आश्रय से नाश हुआ, इसलिए ऐसा कहते हैं। बाकी स्वभाव है, वह नाश करेगा तो रहेगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ, ज्ञान-आनन्द में जैसे शाश्वत् विराजमान है, ऐसी की ऐसी चीज़ अनादि-अनन्त है। आहाहा!

रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,... अर्थात् जिसमें रागरूपी समुद्र का पूर है ही नहीं। **जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है,...** आहाहा! हनन कर डाला है। या हवन। आहाहा! **जो सच्चे सुखसागर का नीर है...** सच्चे सुखसागर के जल से भरपूर, सच्चे सुखसागर के नीर से भरा हुआ ऐसा प्रभु है। उसे कोई व्यवहार-फ्यवहार अन्दर में नहीं है। व्यवहार, व्यवहार में है; अन्तर में नहीं है। आहाहा! **जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है,...** आहाहा! **जो सच्चे सुखसागर का नीर है और जिसने काम को अस्त किया है,...** आहाहा! काम अर्थात् वासना। किसी भी स्वर्ग के सुख की या किसी भी बाहर के सुख की, चीज़ की विशेषता, विस्मयता, अधिकता लगे, ऐसा उसमें है ही नहीं। उससे रहित ही है। उसे यहाँ नाश किया, ऐसा कहने में आया है।

वह समयसार... वह समयसार, देखो। आत्मा त्रिकाली। **मेरी शीघ्र रक्षा करो।** शीघ्र रक्षण करो, यह पर्याय है। समयसार, वह द्रव्य है। आहाहा! उस समयसार द्रव्य में यह बात कही, नाश किया, यह सब बात व्यवहार है, वह बताया है। अन्दर में कुछ नहीं है, वह तो निर्मलानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, अमृत के सागर से भरपूर सुखसागर का पूर है, अतीन्द्रिय आनन्द का पूर है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय बताते हैं। आहाहा! उस चीज़ को जाने बिना, ऊपर के सब क्रियाकाण्ड संसार है।

वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो। आहाहा! वह समयसार मैंने जो दृष्टि में लिया है तो मेरी रक्षा होगी। मुझे सिद्धपद मिलेगा। ऐसे मेरी रक्षा करो, ऐसा कहा है। आहाहा! समयसार भगवान को मैंने पकड़ा है तो मेरी मुक्ति होगी, वह तो पर्याय में है। वह मेरी रक्षा करो। रागादि, व्यवहार की बात छोड़ो। मेरी रक्षा यह समयसार करेगा। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को व्यवहार से सत्यार्थ कहा है, परन्तु वह कोई रक्षा करनेवाली चीज़ नहीं

है। आहाहा! व्यवहार से सत्य भी कहा है परन्तु वह कोई वस्तुस्थिति नहीं है। सच्चिदानन्द प्रभु के समक्ष उस चीज़ की (व्यवहार की) कोई कीमत नहीं है। आहाहा!

जिसने काम को अस्त किया है, वह समयसार... पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं, जिन्हें तीन कषाय का अभाव है, जिन्हें अकषाय, तीन कषाय का अभाव (होकर) आनन्द (प्रगट हुआ) है। अभाव अर्थात् पर्याय में आनन्द और शान्ति प्रगट हुई है। सम्यग्दृष्टि को तो सम्यग्दर्शन मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के अभाव तक की शान्ति और सुख आया है। मुनि को तो तीन कषाय के अभाव का आनन्द और सुख आया है। आहाहा! यह कहते हैं, वह समयसार मेरी रक्षा करो। प्रभु त्रिकाली द्रव्य मेरी रक्षा करो। मेरा नाथ शाश्वत् है, वह मेरी रक्षा करो। आहाहा! मेरी प्राप्त निर्मल पर्याय में उसका आलम्बन है, वह रक्षा करो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निर्मल पर्याय प्रगट करने में कोई व्यवहार या विकल्प का सहारा है, ऐसा नहीं है। विकल्प, विकल्परूप से है परन्तु अन्दर में उसका सहारा लाभदायक है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा!

शीघ्र रक्षा करो। अब यह क्रमबद्ध कहाँ गया? शीघ्र कहते हैं न? अल्प काल में होओ। इसका अर्थ यह है, प्रभु! जिसने समयसार पकड़ा, उसे केवलज्ञान प्राप्त करने में अल्प काल ही है। आहाहा! उसके क्रम में अल्प काल ही है। है तो क्रमसर, क्रमबद्ध, तीन काल-तीन लोक में सब पर्याय क्रमबद्ध है। आहाहा! जिस समय में, जिस काल में, जिस संयोग में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह होगी, होगी और होगी ही; परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि मेरी रक्षा तो समयसार करो। आहाहा! मेरा ध्यान द्रव्य पर है, मेरा ध्यान पदार्थ पर है, वही मेरी रक्षा करता है। केवलज्ञान प्राप्त करने में और मोक्षमार्ग रखने में उसकी मदद है। निश्चयमोक्षमार्ग रखने में, निश्चयमोक्षमार्ग उत्पन्न करने में और मोक्ष उत्पन्न करने में उसका आधार है। आहाहा! ऐसी बात है।

आत्मा क्या चीज़ है, वह लोगों ने सुनी नहीं। आत्मा तो महाप्रभु अनन्त-अनन्त प्रभु शक्ति से (भरपूर है)। एक शक्ति नहीं। अनन्त-अनन्त शक्ति से भरपूर प्रभु भगवान है, वह यहाँ आचार्य महाराज / मुनि कहते हैं, मेरी रक्षा करता है। मेरे ध्यान में यह चीज़ है। वह मेरी रक्षा करती है। मैं राग मन्द करूँ तो मुझे लाभ होता है, ऐसी कोई चीज़ मेरे पास नहीं है। आहाहा! एक समयसार मेरी रक्षा करता है। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव की यह टीका है। यह ६२वाँ श्लोक हुआ।

श्लोक-६३

(मालिनी)

जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म-
प्रभमुनिहृदयाब्जे सन्स्थितं निर्विकारम्।
हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्,
भव-भव-सुख-दुःखान्मुक्त-मुक्तं बुधैर्यत्।।६३।।

(वीरछन्द)

तत्त्व निपुण पद्मप्रभ मुनि के हृदय कमल में सुस्थित है।
निर्विकार वह परमतत्त्व जो विविध विकल्प विनाशक है॥
भव-भव के सुख-दुःख कल्पना मात्र रम्य जो लगें अहो।
उन सुख-दुःख से रहित कहें बुध परमतत्त्व जयवंत रहो॥६३॥

***श्लोकार्थः*—जो तत्त्वनिष्णात (वस्तुस्वरूप में निपुण) पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में सुस्थित है, जो निर्विकार है, जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है और जिसे बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य—ऐसे भव-भव के सुखों से तथा दुःखों से मुक्त (रहित) कहा है, वह परमतत्त्व जयवन्त है।।६३।।**

श्लोक-६३ पर प्रवचन

अब, ६३ वाँ श्लोक

जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म-
प्रभमुनिहृदयाब्जे सन्स्थितं निर्विकारम्।
हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्,
भव-भव-सुख-दुःखान्मुक्त-मुक्तं बुधैर्यत्।।६३।।

आहाहा! **जो तत्त्वनिष्णात (वस्तुस्वरूप में निपुण)...** है। भगवान आत्मा जैसी अस्ति सम्यक्, सत्य जितनी है, उसमें जो निपुण है, वह **पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में**

सुस्थित है,... आहाहा! यह मुनिपना। ऐसा जो वस्तुस्वरूप निरूपण, वस्तुस्वरूप में महानिपुण, तत्त्व निष्णात पद्मप्रभमलधारि मुनि कहते हैं कि मेरे हृदय कमल में सुस्थित है। आहाहा! तीन कषाय का अभाव है। महामुनिपना! गजब बात है, भाई! आहाहा! मुनि तो परम इष्ट हैं। परमेष्ठी में मुनि तो मिल गये हैं। वे यहाँ कहते हैं कि हमारी रक्षा तो समयसार त्रिकाली भगवान, वह हमारे हृदय में ध्येय वर्तता है, वही हमारी रक्षा करता है।

जो तत्त्वनिष्णात (वस्तुस्वरूप में निपुण) पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में... यहाँ हृदय (अर्थात्) ज्ञान में। हृदय अर्थात् ज्ञान, उस कमल में सुस्थित है। मेरे हृदयकमल में भगवान पूर्णानन्द सुस्थित है। आहाहा! **जो निर्विकार है,...** भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय, सम्यग्दर्शन का आश्रय, वह निर्विकार है, वह निर्विकार है। **जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है...** आहाहा! विविध विकल्प अर्थात् चाहे जिस प्रकार के विकल्प। गुण-गुणी के भेद का भी विकल्प जिसमें नहीं है। नहीं (है) तो उसने नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! मुनि को शब्द कम पड़ते हैं। आत्मा को किस प्रकार रखना, उसके लिये शब्द थोड़े पड़ते हैं। आहाहा! आहाहा! क्योंकि स्वररहित है। यह तो पहले कहा। शब्दरहित है, वाणीरहित है, विकल्परहित है। अब उसे कहना है कि आत्मा ऐसा। आहाहा! वह तो मेरे हृदय में स्थित है। वह तो मैं जानता हूँ, ऐसा कहते हैं। वह परमात्मा मेरे हृदय में स्थित है। मैं जानता हूँ, अनुभव करता हूँ, वह निर्विकार है।

जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है और जिसे बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य... आहाहा! **ऐसे भव-भव के सुखों से...** भव वन में देव का सुख, अरबोंपति का सुख, करोड़ोंपति का सुख, यह भव भव में जो कल्पनामात्र सुख... आहाहा! रम्य। **कल्पनामात्र-रम्य...** कल्पना से मानता है। सुख है नहीं। स्वर्ग में भी सुख नहीं है। अरबोंपति भी सुखी नहीं है। वे कल्पना से मानते हैं कि हम सुखी हैं। आहाहा! मूढ़ है। पैसा आदि से सुखी, करोड़पति, अरबोंपति.. आहाहा! वहाँ नैरोबी गये थे। आहाहा! पन्द्रह तो अरबपति! साढ़े चार सौ करोड़पति, साढ़े चार सौ करोड़पति। कहा-भाई! वह तो सब धूल है। सब सुनने आये थे और तुम पैसा-बैसा लिखकर मन्दिर में खर्च करते हो, इसलिए वह क्रिया तुम कर सकते हो, आत्मा मन्दिर बना सकता है, ऐसा नहीं है। शुभभाव पुण्य है। पुण्यबन्ध होगा। उसमें आत्मा का कल्याण नहीं है। आहाहा! नहीं तो यह तो पच्चीस

लाख का (मन्दिर) बनानेवाले हैं। पच्चीस लाख का एक मन्दिर। साठ लाख रुपये एकत्रित किये हैं। आहाहा! चैतन्य के आनन्द के समक्ष किसी चीज़ की कीमत नहीं है। किसी चीज़ की कीमत ही नहीं है। आहाहा!

ऐसे भव-भव के सुखों से... कैसा? **बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य...** दुनिया के सुख कल्पनामात्र रम्य। आहाहा! स्त्री का सुख, पैसे का सुख, इज्जत का सुख, प्रशंसा... ओहोहो! बहुत प्रशंसा करे तो अन्दर प्रसन्न हो जाये... आहाहा! वह सब कल्पनामात्र रम्य है। **कल्पनामात्र-रम्य—ऐसे भव-भव के सुखों से तथा दुःखों से...** भव-भव के सुख और दुःख। यहाँ भव-भव में सुख कहा अवश्य। भव-भव में सुख कहा। देवलोक में। यह कल्पना करता है तो कहा अवश्य। भव-भव में सुख और दुःख। तो भव-भव में जो देवलोक आदि (में) सुख मानता है, यह बात कही। आहाहा! वह कल्पनामात्र सुख और कल्पनामात्र दुःख है। उन **दुःखों से मुक्त (रहित) कहा है,...** तीन लोक के नाथ जिनवरदेव ने दिव्यध्वनि द्वारा भगवान को रम्य-कल्पनामात्र भव-भव के सुख और दुःख से रहित कहा है। आत्मा में वह कुछ है ही नहीं। आहाहा! कल्पना करो कि हम पैसे से सुखी हैं; निरोग हैं, इसलिए सुखी हैं; आठ-दस लड़के अच्छे कमाऊँ हुए, इसलिए हम सुखी हैं। कल्पना करो। कल्पनामात्र रम्य है। आहाहा!

वह परमतत्त्व जयवन्त है। आहाहा! क्या कहते हैं? उस दुःख से रहित हुआ, **वह परमतत्त्व जयवन्त है।** आहाहा! यह अपनी स्थिति बताते हैं। परमतत्त्व जगत में जयवन्त नहीं परन्तु यहाँ जयवन्त दिखता है। हमारा प्रभु हमें दिखता है, वह जयवन्त है। आहाहा! जैसा हम कहते हैं, वैसा जयवन्त है। ऐसा हमारे अनुभव में आया है। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

परमतत्त्व जयवन्त है। जयवन्त है अर्थात् किसी का तत्त्व जयवन्त है, ऐसा नहीं। हमारा भगवान परमतत्त्व हृदय में ज्ञात होता है, वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! यह मुनि की दशा। जिसे भगवान हृदयकमल में सदा निरन्तर जयवन्त वर्तता है। आहाहा! जिन्हें हिलने-चलने का, खाने-पीने के विकल्प में भी दुःख लगे। उस पर लक्ष्य नहीं। भगवान निर्मलानन्द अन्दर विराजमान है, उस पर दृष्टि होने से जयवन्त वर्तता है। ऐसा रागादि आया, इसलिए अड़चन हुई या विघ्न आया, ऐसा नहीं है। आत्मा अन्दर जयवन्त वर्तता है। आहाहा! हमारी पर्याय के अनुभव से हम कहते हैं कि यह आत्मा ऐसा जयवन्त वर्तता

है। आहाहा! आहाहा! गजब बात है। दिगम्बर मुनियों की एक-एक भाषा बहुत गहरी, बहुत गहरी! जयवन्त वर्तता है, यह समझ में आया? भगवान जयवन्त वर्तता है।

यहाँ तो **दुःखों से मुक्त (रहित) कहा है, वह परमतत्त्व जयवन्त है।** आहाहा! हमारी दृष्टि में, ज्ञान में वह आया है। जो वस्तु जानने में नहीं आयी, उसे जयवन्त कैसे कहा जाये? यह चीज़ ऐसी है, यह वस्तु ऐसी है, वह वस्तु जाने बिना ऐसी है, ऐसा कैसे कहना? आहाहा! मुनिराज की मस्ती है! यह भगवान, जो हमने कहा, वह हमारे ज्ञान में, ख्यालसहित हमें जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह ६३वाँ श्लोक हुआ।

श्लोक-६४

(मालिनी)

अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा,
सहज-गुण-मणीना-माकरं तत्त्वसारम्।
निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं,
भजतु भव-विमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः।।६४।।

(वीरछन्द)

अहो भव्यता द्वारा प्रेरित होने वाले आत्मन्! जो।
भव विमुक्त होना चाहो तो निज आतम को शीघ्र भजो॥
अनुपम ज्ञानाधीन सदा जो सहज शक्ति मणियों की खान।
सर्व तत्त्व में सारभूत जो निज परिणति सुखसागर मग्न॥६४॥

श्लोकार्थः—**जो आत्मा, भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो कि जो (आत्मा) अनुपम ज्ञान के आधीन है, जो सहजगुणमणि की खान है, जो (सर्व) तत्त्वों में सार है और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।।६४।।**

श्लोक-६४ पर प्रवचन

६४ वाँ श्लोक।

अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा,
सहज-गुण-मणीना-माकरं तत्त्वसारम् ।
निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं,
भजतु भव-विमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः ।।६४।।

आहाहा! **जो आत्मा, भव्यता द्वारा प्रेरित हो,...** आहाहा! अपनी योग्यता द्वारा प्रेरित हुआ है। भव्य तो भले अनन्त हों। अभव्य तो अनन्तवें भाग हैं। एक अभव्य और अनन्त भव्य, ऐसी जीव की संख्या है। परन्तु यहाँ अनन्त भव्यों में भी जिसे भव्य प्रेरित हुई है। आहाहा! अन्तर में आत्मा की योग्यता प्रेरित हुई है। आहाहा! **भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु...** आहाहा! नहीं तो पंचम काल है न, प्रभु! पंचम काल के मुनि मोक्ष में नहीं जाते, देव में जायेंगे।

यहाँ तो कहते हैं, **भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो...** भव से विमुक्त होने के लिये निरन्तर आत्मा को भजो। दूसरा कोई हेतु नहीं है। आहाहा! भव का अभाव करने के लिये प्रभु! तू तेरे आत्मा को भज, तेरा भगवान तेरे पास है। पास क्या है? तू भगवान ही है। आहाहा! कैसे जँचे? जहाँ आम का रस अच्छा आया हो, थाली में पूरणपोली आयी हो, वहाँ अन्दर में गलगलिया हो जाये। अरे प्रभु! अरे प्रभु! उस चीज़ की तो आत्मा में गन्ध भी नहीं है। तू उसे देखता है, यह भी व्यवहार है। उसे देखता है, यह व्यवहार है। स्वयं को देखना, वह निश्चय है। ऐसी चीज़ में ललचाया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो...** भव से विमुक्त (होने के लिये) आत्मा का भजन। भगवान का भजन भी नहीं। भक्ति दो प्रकार की है : निजभक्ति और परभक्ति। जयसेनाचार्य की टीका में है। समयसार की टीका में दो प्रकार की भक्ति है। निजभक्ति और परभक्ति, ऐसा पाठ है। वह निजभक्ति स्वयं को कल्याणकारक है। परभक्ति तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समयसार जयसेनाचार्य की टीका में है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु...** कोई भी हेतु करके तू दया,

दान, व्रत का विकल्प कर, वह कोई वस्तु नहीं है। वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कुछ भी रागादि करूँ और उसमें से कुछ मिलेगा, यह तो मिथ्यात्व है। यहाँ तो **भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो...** आत्मा को भजो, आत्मा की भक्ति करो। यह अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, इसके सन्मुख होकर इसे भजो। पर से विमुख होकर, प्रभु के सन्मुख होकर प्रभु को भजो। आहाहा! गजब बात है। अरे! मूल बात सुनने को मिले नहीं, वह कब करे बेचारा? आहाहा!

आज लन्दन से पत्र आया है। प्रेमचन्द है न एक? एक प्रेमचन्द है, बहुत वैरागी और लन्दन में महाजन है। पत्र आया था। इतनी प्रसन्नता.. प्रसन्नता.. ऐसा कहता है, हम पढ़ते हैं, उसमें इतना आह्लाद हमें आता है कि इस अनार्यदेश में हमें क्या चीज़ मिली! स्वाध्याय करता है, पच्चीस-पचास लोग इकट्ठे होते हैं। थोड़े-थोड़े बढ़ते हैं। लन्दन में भी पढ़ते हैं और बढ़ते हैं। आहाहा! लन्दन हो या काठियावाड़ हो, आत्मा में क्या है? आत्मा में तो देश है नहीं। वह तो पहले कहा। आत्मा में दिशा नहीं, वहाँ देश कहाँ से होगा? आत्मा में दिशा नहीं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशा नहीं, वहाँ देश कहाँ से आया? आहाहा! उसका स्वदेश तो परमात्मास्वरूप, वह अपना स्वदेश है। वहाँ भगवान विराजता है। आहाहा!

भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो कि जो (आत्मा) अनुपम ज्ञान के आधीन है,... देखो! कहते हैं भजो। उसमें भजा जा सकता है या नहीं? भजो, ऐसा कहा तो भजा जा सकता है या नहीं? तो कहते हैं **अनुपम ज्ञान के आधीन है,...** आहाहा! परन्तु अनुपम ज्ञान के आधीन, हों! शास्त्रज्ञान के आधीन नहीं। अनुपम। अन्तर में जिस ज्ञान को उपमा नहीं, ऐसे अनुपम ज्ञान के आधीन आत्मा है। आहाहा! किसी शास्त्र के ज्ञान से मिल जाये, वह ऐसी चीज़ नहीं है। यह तो पहले कहा न? स्वर, व्यंजन, अक्षर, विसर्ग कुछ भी आत्मा में नहीं है। जो नहीं है, उससे आत्मा किस प्रकार प्राप्त हो? आहाहा!

जो (आत्मा) अनुपम ज्ञान के आधीन है,... ओहोहो! शब्द तो बहुत थोड़े हैं। अनुपम ज्ञान-जिसको उपमा न दी जा सके, ऐसा अन्तर में ज्ञान उत्पन्न हुआ। अन्तर ज्ञान में ज्ञान उत्पन्न हुआ, उस अनुपम ज्ञान के आधीन भगवान है। उस अनुपम ज्ञान के आधीन भगवान प्राप्त होता है। किसी बाह्य ज्ञान से आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहाहा! गजब बात है।

व्यवहार है। व्यवहार को भी व्यवहाररूप से भूतार्थ कहा है। हेयरूप से है; आदरणीय नहीं, अनुसरण करने योग्य नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि अनुपम ज्ञान के आधीन। शास्त्रज्ञान के आधीन भी वह नहीं है। वह तो अन्तर उपमारहित भगवान विराजता है, उसके सन्मुख का ज्ञान, उस ज्ञान के आधीन है। उस ज्ञान के आधीन भगवान ज्ञात होता है। आहाहा! एक-एक बोल कठिन पड़े। आहाहा! **सहजगुणमणि की खान है,...** प्रभु कैसा है? स्वाभाविक गुण-मणि, गुणरत्न। गुणरत्न की खान है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुणमणि की खान है। आहाहा! जिस खान में से निकलते-निकलते पार न आवे। अनन्त गुण केवलज्ञान प्रगट हो जाये तो भी पार न आवे, ऐसा वह खजाना है। आहाहा! ऐसा वह आत्मा निज खजाना है। **सहजगुणमणि...** स्वाभाविक गुणरूपी रत्न की खान। आहाहा! दुनिया के रत्न-फत्न... रजनीभाई! तुम्हारे रत्न की कीमत यहाँ कुछ नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ करोड़ों रुपये हो, वह मानो (कि) हम कैसे सुखी! दुःखी है। परद्रव्य के ओर के लक्ष्य में आपदा और विपदा है।

वह यहाँ कहते हैं, **अनुपम ज्ञान के आधीन है,...** आहाहा! और **सहजगुणमणि की खान है,...** वह अनुपम ज्ञान प्रगट करने के लिये किसी बाहर के आधार की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! प्रभु! तू पूर्णानन्द की खान है न, नाथ! आहाहा! अनन्त गुणरूपी मणिरत्न। अनन्त गुणरूपी रत्न-मणि की खान। आहाहा! उसमें से संसार उत्पन्न हो, ऐसी तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! राग उत्पन्न हो, ऐसी कोई चीज़ ही नहीं है। **सहजगुणमणि की खान है,...** वह तो स्वाभाविक गुणमणि की खान है। निर्मल गुण की परिणति प्रगट हो, ऐसी खान है। आहाहा! निर्मल गुण की अवस्था, परिणति प्रगटे, उसकी वह खान है, किसी राग से निर्मल परिणति प्रगट होती है, व्यवहार करते-करते होगी, (ऐसा नहीं है)। व्यवहार है परन्तु उससे होता नहीं। आहाहा!

सहजगुणमणि की खान है, जो (सर्व) तत्त्वों में सार... आहाहा! नवतत्त्व भले कहो, मोक्षतत्त्व कहो, संवर-निर्जरातत्त्व, धर्म तत्त्व, परन्तु सर्व तत्त्व में सार आत्मा है। वह तो सब पर्याय है। आहाहा! एक-एक शब्द यह है। धन्नालालजी! धन्य करे, वह धन्नालाल है यहाँ तो। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत अन्तर हो गया।

सबका कल्याण होओ। सब भगवान हैं। अरे! दुःखी कोई न रहो। परिभ्रमण किसी

को न रहो। आहाहा! जैसे दुःख अपने को नहीं रुचता, वैसे सर्व जीवों को नहीं रुचता। प्रभु! तुम सुख की खान, मणिरत्न की खान हो न! उसमें से सुख निकालो न, प्रभु! आहाहा! जानबूझकर दुःखी (होवे, यह न हो)। अस्तितत्त्व, मणिरत्न से भरपूर तत्त्व के सन्मुख न देखकर बाह्य सन्मुख देखकर दुःखी होता है, प्रभु! यह तुझे न हो। आहाहा! आचार्यों की पुकार है। सर्व जीवों... आहाहा! आत्मानन्द को प्राप्त करो। आहाहा! तेरी चीज़ तुझे प्राप्त हो, उसमें क्या है? तेरी चीज़ ही ऐसी है। क्या कहा? देखो!

तत्त्वों में सार है... सब तत्त्व संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि चाहे जो तत्त्व हो, उसमें सार तो प्रभु है। आहाहा! **और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।** वर्तमान वापस एक ली है। क्या कहा? कि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा कहते हैं, परन्तु ऐसा हमारी परिणति में भास हुआ है, इसलिए ऐसा कहते हैं। क्या कहा? **जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।** आहाहा! वर्तमान सुख और अतीन्द्रिय आनन्द की निज परिणति, ऐसे सुखसागर में, **सुखसागर में मग्न होता है।** यह पर्याय ली है। इस परिणति द्वारा जीव जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहा जाता है। जो चीज़ दृष्टि में आयी नहीं, ज्ञान में ज्ञेय हुई नहीं, उस चीज़ में स्थिर होना, यह तो कहाँ से बने? प्रभु! ज्ञान में ज्ञेय आता है, ज्ञेय का ज्ञान होता है, तब उसमें लीन होने की बात है। चारित्र तो तब होता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं **जो निजपरिणति के...** निजपरिणति अर्थात् वीतरागपरिणति। आहाहा! रागरहित निज, निर्विकल्प परिणति / दशा, निर्विकल्प दशा द्वारा। **सुखसागर में मग्न होता है।** ऐसी चीज़ है, उस चीज़ की जहाँ दृष्टि हुई, तो निजपरिणति के सुखसागर में आत्मा मग्न होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा है.. (है.. ऐसा नहीं)। है, परन्तु है—ऐसा ज्ञान में आया, तब वह है। तो है वैसी परिणति भी हुई। निज आत्मा की सुखसागर की परिणति में 'है' ऐसा भासित हुआ है। आहाहा!

एक बार कहा था न? वीरजीभाई के लड़के ने पूछा था। त्रिभुवनभाई, राजकोट रहता है न? कहता कि कारणपरमात्मा... कारणपरमात्मा आप कहते हो, तो कारणपरमात्मा हो तो कार्य तो आना चाहिए? (हमने कहा) किसने इनकार किया? कहा, परन्तु कारणपरमात्मा अन्दर अनुभव में है, ऐसा आवे उसे कारणपरमात्मा है या कारणपरमात्मा लक्ष्य में धार लिया और वस्तु तो ख्याल में (भास में) आयी नहीं, तो कारणपरमात्मा का

कार्य किस प्रकार हो? आहाहा! कारणपरमात्मा है... आहाहा! परन्तु वह है, उसका पर्याय में ख्याल आये बिना उसका अस्तित्व / मौजूदगी, हयाति का अनुभव और पर्याय में आनन्द आये बिना, उसकी अस्ति किस प्रकार स्वीकार की? इसलिए कारणपरमात्मा का स्वीकार करनेवाले को कार्य में आनन्द आये बिना रहता ही नहीं। आहाहा! यह प्रश्न किया था।

वीरजीभाई, काठियावाड़ में दिगम्बर के शास्त्र का प्रथम अभ्यास वीरजीभाई को था। वीरजी वकील, ९१-९२ वर्ष में गुजर गये। जामनगर के थे। बहुत वर्ष का अभ्यास। दिगम्बर शास्त्रों का काठियावाड़ में पहला-पहला अभ्यास उन्हें था। मरते तक उस अभ्यास में ही देह उसी-उसी में छूट गया। उनके लड़के को यह जरा प्रश्न हुआ कि तुम कारणपरमात्मा कहते हो कि सभी कारणप्रभु भगवान है तो कारण है तो कार्य आना चाहिए। प्रभु! कार्य तो आता है परन्तु कब? वह कारणप्रभु भगवान सच्चिदानन्द प्रभु है, ऐसा ज्ञान अनुभव में आये बिना 'है' ऐसा कहाँ से आया? वह है, यह तुझे कहाँ से आया? उसके ज्ञान में ज्ञान हुए बिना, प्रतीति आये बिना, वेदन हुए बिना वह 'है' ऐसा किस प्रकार तूने माना? उसकी अस्ति का स्वीकार किसने किया? आहाहा! और अस्ति का स्वीकार करे और कार्य न हो, (ऐसा होता ही नहीं)। वरना तो है तो कारणपरमात्मा सबके पास है। अभव्य के पास भी कारणपरमात्मा है। समझ में आया?

भगवान कारणपरमात्मा है, परन्तु तुम कारण को स्वीकार करो, पर्याय में वीतरागी पर्याय बनाकर वीतरागी कारणपरमात्मा को स्वीकार करो, तब तुम्हें कारणपरमात्मा है। आहाहा! नहीं तो कारणपरमात्मा तो सबको, अभव्य को भी है। कभी लक्ष्य नहीं देता, कभी उसके भव नहीं घटते। अभव्य भी, सर्व जीव सिद्धसम हैं। श्रीमद् कहते हैं 'सर्व जीव है सिद्धसम।' कोई जीव (बाकी नहीं रखे)। वह तो पर्याय में अन्तर है। अन्दर में वस्तु परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुण का समुद्र है। परन्तु 'है' उसका स्वीकार करे, उसे है। वीतरागी पर्याय से स्वीकार करे, तब है। राग से स्वीकार करे तो उसमें राग नहीं तो स्वीकार कहाँ से होगा? समझ में आया? पुण्य का विकल्प है राग, व्यवहार भी आयेगा, परन्तु उससे स्वीकार नहीं होगा। उससे रहित होता है, तब स्वीकार होता है। स्वीकार होता है, उसे कारणपरमात्मा का फल आया। उस फल

द्वारा उसकी अस्ति की स्वीकृति की, उसे कारणपरमात्मा है। दूसरे को कारणपरमात्मा है, वह कान से सुन लिया। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।** आहाहा! तीन लोक के नाथ परमात्मा की दृष्टि करने से... आहाहा! **निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।** यह पर्याय की बात है। उसके सन्मुख हो और निजपरिणति सुखसागर उत्पन्न न हो, ऐसा कभी नहीं होता और उसके सन्मुख न हो और सुख की परिणति उत्पन्न हो, ऐसा भी कभी उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! ऐसी कठिन बात।

बाल बच्चे भी प्रभु हैं। सब प्रभु ही हैं। अरे! निगोद का जीव भी प्रभु है। आहाहा! एक अंगुल के असंख्य भाग में एक लहसुन, एक प्याज, एक इतने टुकड़े में... आहाहा! असंख्यात शरीर। एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुने जीव, उनके अस्तित्व की स्वीकृति, अपने अस्तित्व की स्वीकृति बिना पर के अस्तित्व की व्यवहार से स्वीकृति नहीं होती। समझ में आया?

अपना अस्तित्व यहाँ निज सागर से भरा है, ऐसे **निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।** तब आत्मा है, कारणपरमात्मा है, प्रभु है, उसमें राग नहीं है, वह परमात्मा ध्रुव है, तब पर्याय में परिणति सन्मुख होकर हुई, तब प्रतीति में आता है, इसके बिना प्रतीति नहीं होती। आहाहा! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)